श्रीमद् भगवदगीता – सातवाँ अध्याय

ज्ञानविज्ञानयोग

अनुक्रम

सातवें अध्याय का माहात्म्य 1
सातवाँ अध्यायःज्ञानविज्ञानयोग 2

सातवें अध्याय का माहात्म्य

भगवान शिव कहते हैं- "हे पार्वती ! अब मैं सातवें अध्याय का माहात्म्य बतलाता हूँ, जिसे सुनकर कानों में अमृत-राशि भर जाती है।

पाटलिपुत्र नामक एक दुर्गम नगर है जिसका गोपुर (द्वार) बहुत ही ऊँचा है। उस नगर में शंकुकर्ण नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसने वैश्य वृत्ति का आश्रय लेकर बहुत धन कमाया किन्तु न तो कभी पितरों का तर्पण किया और न देवताओं का पूजन ही। वह धनोपार्जन में तत्पर होकर राजाओं को ही भोज दिया करता था।

एक समय की बात है। उस ब्राह्मण ने अपना चौथा विवाह करने के लिए पुत्रों और बन्धुओं के साथ यात्रा की। मार्ग में आधी रात के समय जब वह सो रहा था, तब एक सर्प ने कहीं से आकर उसकी बाँह में काट लिया। उसके काटते ही ऐसी अवस्था हो गई कि मणि, मंत्र और औषधि आदि से भी उसके शरीर की रक्षा असाध्य जान पड़ी। तत्पश्चात कुछ ही क्षणों में उसके प्राण पखेरु उड़ गये और वह प्रेत बना। फिर बहुत समय के बाद वह प्रेत सर्पयोनि में उत्पन्न हुआ। उसका वित्त धन की वासना में बँधा था। उसने पूर्व वृत्तान्त को स्मरण करके सोचाः

'मैंने घर के बाहर करोड़ों की संख्या में अपना जो धन गाड़ रखा है उससे इन पुत्रों को वंचित करके स्वयं ही उसकी रक्षा करूँगा।'

साँप की योनि से पीड़ित होकर पिता ने एक दिन स्वप्न में अपने पुत्रों के समक्ष आकर अपना मनोभाव बताया। तब उसके पुत्रों ने सवेरे उठकर बड़े विस्मय के साथ एक-दूसरे से स्वप्न की बातें कही। उनमें से मंझला पुत्र कुदाल हाथ में लिए घर से निकला और जहाँ उसके पिता सर्पयोनि धारण करके रहते थे, उस स्थान पर गया। यद्यपि उसे धन के स्थान का ठीक-ठीक पता नहीं था तो भी उसने चिह्नों से उसका ठीक निश्चय कर लिया और लोभबुद्धि से वहाँ पहुँचकर बाँबी को खोदना आरम्भ किया। तब उस बाँबी से बड़ा भयानक साँप प्रकट हुआ और बोलाः

'ओ मूढ ! तू कौन है? किसलिए आया है? यह बिल क्यों खोद रहा है? किसने तुझे भेजा है? ये सारी बातें मेरे सामने बता।'

पुत्रः "मैं आपका पुत्र हूँ। मेरा नाम शिव है। मैं रात्रि में देखे हुए स्वप्न से विस्मित होकर यहाँ का सुवर्ण लेने के कौतूहल से आया हूँ।"

पुत्र की यह वाणी सुनकर वह साँप हँसता हुआ उच्च स्वर से इस प्रकार स्पष्ट वचन बोलाः "यदि तू मेरा पुत्र है तो मुझे शीघ्र ही बन्धन से मुक्त कर। मैं अपने पूर्वजन्म के गाड़े हुए धन के ही लिए सर्पयोनि में उत्पन्न हुआ हूँ।"

पुत्रः "पिता जी! आपकी मुक्ति कैसे होगी? इसका उपाय मुझे बताईये, क्योंकि मैं इस रात में सब लोगों को छोड़कर आपके पास आया हूँ।"

पिताः "बेटा ! गीता के अमृतमय सप्तम अध्याय को छोड़कर मुझे मुक्त करने में तीर्थ, दान, तप और यज्ञ भी सर्वथा समर्थ नहीं हैं। केवल गीता का सातवाँ अध्याय ही प्राणियों के जरा मृत्यु आदि दुःखों को दूर करने वाला है। पुत्र ! मेरे श्राद्ध के दिन गीता के सप्तम अध्याय का पाठ करने वाले ब्राह्मण को श्रद्धापूर्वक भोजन कराओ। इससे निःसन्देह मेरी मुक्ति हो जायेगी। वत्स ! अपनी शक्ति के अनुसार पूर्ण श्रद्धा के साथ निर्व्यसी और वेदविद्या में प्रवीण अन्य ब्राह्मणों को भी भोजन कराना।"

सर्पयोनि में पड़े हुए पिता के ये वचन सुनकर सभी पुत्रों ने उसकी आज्ञानुसार तथा उससे भी अधिक किया। तब शंकुकर्ण ने अपने सर्पशरीर को त्यागकर दिव्य देह धारण किया और सारा धन पुत्रों के अधीन कर दिया। पिता ने करोड़ों की संख्या में जो धन उनमें बाँट दिया था, उससे वे पुत्र बहुत प्रसन्न हुए। उनकी बुद्धि धर्म में लगी हुई थी, इसलिए उन्होंने बावली, कुआँ, पोखरा, यज्ञ तथा देवमंदिर के लिए उस धन का उपयोग किया और अन्नशाला भी बनवायी। तत्पश्चात सातवें अध्याय का सदा जप करते हुए उन्होंने मोक्ष प्राप्त किया।

हे पार्वती ! यह तुम्हें सातवें अध्याय का माहात्म्य बतलाया, जिसके श्रवणमात्र से मानव सब पातकों से मुक्त हो जाता है।"

(अनुक्रम)

सातवाँ अध्यायः ज्ञानविज्ञानयोग

।। अथ सप्तमोऽध्यायः।।

श्री भगवानुवाच

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युंजन्मदाश्रयः ।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ।।1।।

श्री भगवान बोलेः हे पार्थ ! मुझमें अनन्य प्रेम से आसक्त हुए मनवाला और अनन्य भाव से मेरे परायण होकर, योग में लगा हुआ मुझको संपूर्ण विभूति, बल ऐश्वर्यादि गुणों से युक्त सबका आत्मरूप जिस प्रकार संशयरहित जानेगा उसको सुन । (1)

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ।।2।।

मैं तेरे लिए इस विज्ञान सहित तत्त्वज्ञान को संपूर्णता से कहूँगा कि जिसको जानकर संसार में फिर कुछ भी जानने योग्य शेष नहीं रहता है । (2)

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चियतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ।।3।।

हजारों मनुष्यों में कोई एक मेरी प्राप्ति के लिए यत्न करता है और उन यत्न करने वाले योगियों में भी कोई ही पुरुष मेरे परायण हुआ मुझको तत्त्व से जानता है । (3)

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ।।4।।
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ।।5।।

पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा आकाश और मन, बुद्धि एवं अहंकार... ऐसे यह आठ प्रकार से विभक्त हुई मेरी प्रकृति है । यह (आठ प्रकार के भेदों वाली) तो अपरा है अर्थात मेरी जड़ प्रकृति है और हे महाबाहो ! इससे दूसरी को मेरी जीवरूपा परा अर्थात चेतन प्रकृति जान कि जिससे यह संपूर्ण जगत धारण किया जाता है । (4,5)

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ।।6।।
मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय ।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ।।7।।

हे अर्जुन ! तू ऐसा समझ कि संपूर्ण भूत इन दोनों प्रकृतियों(परा-अपरा) से उत्पन्न होने वाले हैं और मैं संपूर्ण जगत की उत्पत्ति तथा प्रलयरूप हूँ अर्थात् संपूर्ण

जगत का मूल कारण हूँ । हे धनंजय ! मुझसे भिन्न दूसरा कोई भी परम कारण नहीं है । यह सम्पूर्ण सूत्र में मणियों के सदृश मुझमें गुँथा हुआ है । (6,7)

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः ।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ।।8।।
पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ ।
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ।।9।।

हे अर्जुन ! जल में मैं रस हूँ । चंद्रमा और सूर्य में मैं प्रकाश हूँ । संपूर्ण वेदों में प्रणव(ॐ) मैं हूँ । आकाश में शब्द और पुरुषों में पुरुषत्व मैं हूँ । पृथ्वी में पवित्र गंध और अग्नि में मैं तेज हूँ । संपूर्ण भूतों में मैं जीवन हूँ अर्थात् जिससे वे जीते हैं वह तत्त्व मैं हूँ तथा तपस्वियों में तप मैं हूँ । (8,9)

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम् ।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ।।10।।

हे अर्जुन ! तू संपूर्ण भूतों का सनातन बीज यानि कारण मुझे ही जान । मैं बुद्धिमानों की बुद्धि और तेजस्वियों का तेज हूँ । (10)

बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम् ।
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ।।11।।

हे भरत श्रेष्ठ ! आसक्ति और कामनाओं से रहित बलवानों का बल अर्थात् सामर्थ्य मैं हूँ और सब भूतों में धर्म के अनुकूल अर्थात् शास्त्र के अनुकूल काम मैं हूँ । (11)

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये ।
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि ।।12।।

और जो भी सत्त्वगुण से उत्पन्न होने वाले भाव हैं और जो रजोगुण से तथा तमोगुण से उत्पन्न होने वाले भाव हैं, उन सबको तू मेरे से ही होने वाले हैं ऐसा जान । परन्तु वास्तव में उनमें मैं और वे मुझमे नहीं हैं । (12)

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ।।13।।

गुणों के कार्यरूप (सात्त्विक, राजसिक और तामसिक) इन तीनों प्रकार के भावों से यह सारा संसार मोहित हो रहा है इसलिए इन तीनों गुणों से परे मुझ अविनाशी को वह तत्त्व से नहीं जानता । (13)

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।।14।।

यह अलौकिक अर्थात् अति अदभुत त्रिगुणमयी मेरी माया बड़ी दुस्तर है परन्तु जो पुरुष केवल मुझको ही निरंतर भजते हैं वे इस माया को उल्लंघन कर जाते हैं अर्थात् संसार से तर जाते हैं । (14)

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।
माययापहृतज्ञानां आसुरं भावमाश्रिताः ।।15।।

माया के द्वारा हरे हुए ज्ञानवाले और आसुरी स्वभाव को धारण किये हुए तथा मनुष्यों में नीच और दूषित कर्म करनेवाले मूढ लोग मुझे नहीं भजते हैं । (15)

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ।।16।।

हे भरतवंशियो में श्रेष्ठ अर्जुन ! उत्तम कर्मवाले अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी – ऐसे चार प्रकार के भक्तजन मुझे भजते हैं । (16)

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ।।17।।

उनमें भी नित्य मुझमें एकीभाव से स्थित हुआ, अनन्य प्रेम-भक्तिवाला ज्ञानी भक्त अति उत्तम है क्योंकि मुझे तत्त्व से जानने वाले ज्ञानी को मैं अत्यन्त प्रिय हूँ और वह ज्ञानी मुझे अत्यंत प्रिय है । (17)

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् ।।18।।

ये सभी उदार हैं अर्थात् श्रद्धासहित मेरे भजन के लिए समय लगाने वाले होने से उत्तम हैं परन्तु ज्ञानी तो साक्षात् मेरा स्वरूप ही हैं ऐसा मेरा मत है । क्योंकि वह मदगत मन-बुद्धिवाला ज्ञानी भक्त अति उत्तम गतिस्वरूप मुझमें ही अच्छी प्रकार स्थित है । (18)

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ।।19।।

बहुत जन्मों के अन्त के जन्म में तत्वज्ञान को प्राप्त हुआ ज्ञानी सब कुछ वासुदेव ही है- इस प्रकार मुझे भजता है, वह महात्मा अति दुर्लभ है । (19)

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ।।20।।

उन-उन भोगों की कामना द्वारा जिनका ज्ञान हरा जा चुका है वे लोग अपने स्वभाव से प्रेरित होकर उस-उस नियम को धारण करके अन्य देवताओं को भजते हैं अर्थात् पूजते हैं । (20)

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ।।21।।

जो-जो सकाम भक्त जिस-जिस देवता के स्वरूप को श्रद्धा से पूजना चाहता है, उस-उस भक्त की श्रद्धा को मैं उसी देवता के प्रति स्थिर करता हूँ । (21)

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते ।
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हि तान् ।।22।।

वह पुरुष उस श्रद्धा से युक्त होकर उस देवता का पूजन करता है और उस देवता से मेरे द्वारा ही विधान किये हुए उन इच्छित भोगों को निःसन्देह प्राप्त करता है। (22)

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ।।23।।

परन्तु उन अल्प बुद्धिवालों का वह फल नाशवान है तथा वे देवताओं को पूजने वाले देवताओं को प्राप्त होते हैं और मेरे भक्त चाहे जैसे ही भजें, अंत में मुझे ही प्राप्त होते हैं । (23)

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः ।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ।।24।।

बुद्धिहीन पुरुष मेरे अनुत्तम, अविनाशी, परम भाव को न जानते हुए, मन-इन्द्रयों से परे मुझ सच्चिदानंदघन परमात्मा को मनुष्य की भाँति जानकर व्यक्ति के भाव को प्राप्त हुआ मानते हैं । (24)

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ।।25।।

अपनी योगमाया से छिपा हुआ मैं सबके प्रत्यक्ष नहीं होता इसलिए यह अज्ञानी जन समुदाय मुझ जन्मरहित, अविनाशी परमात्मा को तत्त्व से नहीं जानता है अर्थात् मुझको जन्मने-मरनेवाला समझता है । (25)

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन ।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन ॥26॥

हे अर्जुन! पूर्व में व्यतीत हुए और वर्तमान में स्थित तथा आगे होनेवाले सब भूतों को मैं जानता हूँ, परन्तु मुझको कोई भी श्रद्धा-भक्तिरहित पुरुष नहीं जानता ।(26)

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत ।
सर्वभूतानि संमोहं सर्गे यान्ति परंतप ।।27।।

हे भरतवंशी अर्जुन ! संसार में इच्छा और द्वेष से उत्पन्न हुए सुख-दुःखादि द्वन्द्वरूप मोह से संपूर्ण प्राणी अति अज्ञानता को प्राप्त हो रहे हैं । (27)

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ।।28।।

(निष्काम भाव से) श्रेष्ठ कर्मों का आचरण करने वाला जिन पुरुषों का पाप नष्ट हो गया है, वे राग-द्वेषादिजनित द्वन्द्वरूप मोह से मुक्त और दृढ़ निश्चयवाले पुरुष मुझको भजते हैं । (28)

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये ।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् ।।29।।

जो मेरे शरण होकर जरा और मरण से छूटने के लिए यत्न करते हैं, वे पुरुष उस ब्रह्म को तथा संपूर्ण अध्यात्म को और संपूर्ण कर्म को जानते हैं । (29)

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः ।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः ।।30।।

जो पुरुष अधिभूत और अधिदैव के सहित तथा अधियज्ञ के सहित (सबका आत्मरूप) मुझे अंतकाल में भी जानते हैं, वे युक्त चित्तवाले पुरुष मुझको ही जानते हैं अर्थात् मुझको ही प्राप्त होते हैं। (30)

ॐ तत्सदिति श्रीमद् भगवदगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानविज्ञानयोगे नाम सप्तमोऽध्यायः।।7।।
इस प्रकार उपनिषद्, ब्रह्मविद्या तथा योगशास्त्रस्वरूप श्रीमद् भगवदगीता में
श्रीकृष्ण तथा अर्जुन के संवाद में 'ज्ञानविज्ञान योग
नामक' सातवाँ अध्याय संपूर्ण।
ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ